बेनेदितो क्रोचे (1866-1952)

: 1 :

अभिव्यंजनावाद की चर्चा मुख्य रूप से साहित्यालोचन तथा काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के संदर्भ में होती है, किंतु इस सिद्धांत के प्रतिपादक बेनेदितो क्रोचे साहित्यशास्त्री न होकर मूलतः दार्शनिक तथा सौंदर्यशास्त्री थे। उनका जन्म सन् 1866 में इटली के नेपल्स शहर में हुआ था और इसी शहर में सन् 1952 में उनकी मृत्यु हुई। बचपन में ही धर्म से इनकी आस्था उठ गयी थी किंतु बाद में रोम विश्वविद्यालय में नीतिशास्त्र तथा दर्शन के अध्ययन के दौरान आदर्शमूलक दृष्टिकोण (normative approach) के विवेचन के क्रम में जीवन में इनकी आस्था पुनः लौटी। संभवतः यहीं से क्रोचे बाह्य सांसारिक यथार्थ की अपेक्षा चेतना के आंतरिक सत्य पर अधिक विश्वास करने लगे थे। राजनीतिक अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन के साथ ही ये मार्क्सवाद के कट्टर आलोचक बन गये। क्रोचे का पूरा जीवन गहन अध्ययन-विवेचन तथा लेखन में बीता। दर्शन, तर्कशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, इतिहास तथा साहित्यालोचन संबंधी विषयों पर वे बराबर लिखते रहे। सन् 1902 में इन्होंने 'ला क्रितीका' नामक पत्रिका भी निकाली। इटली तथा यूरोप के इतिहास के अतिरिक्त अन्य कई देशों के इतिहास तथा साहित्य पर भी इनका लेखन चलता रहा। सन् 1933 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में कविता पर दिये गये प्रसिद्ध भाषण 'डिफेंस ऑफ पोएट्री' में कविता तथा साहित्य संबंधी इनकी परवर्ती मान्यताएँ व्यक्त हुई हैं।

अभिव्यंजना सिद्धांत मूलतः सौंदर्यशास्त्र से संबद्ध है। इसकी प्रथम रूपरेखा सन् 1900 में प्रस्तुत क्रोचे के निबंध 'एस्थेटिक ऐज़ द साइंस ऑफ एक्सप्रेशन एंड जेनरल लिंग्विस्टिक्स' में मिलती है। यह निबंध सन् 1902 में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'एस्थेटिक' के रूप में प्रकाशित हुआ। सन् 1912 में क्रोचे ने सौंदर्यशास्त्र

संबंधी चार आलेख राइस इंस्टीट्यूट में पढ़े और 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के लिए इसी विषय पर एक लेख लिखा। सन् 1920 में इनके सौंदर्यशास्त्रीय निबंधों का संग्रह 'न्यू एसेज़ ऑन एस्थेटिक' प्रकाशित हुआ। अपनी आत्मकथा में उन्होंने दिखलाया है कि किस तरह शास्त्रीय विद्याओं के अध्ययन के क्रम में वे अपनी विचारधारा में क्रमशः अमूर्तता की ओर बढ़ते गये और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'स्पिरिट' या चेतना या मानस ही 'चरम सत्य' है। चेतना के स्तर पर ही समस्त क्रियाएँ होती हैं। बाह्य संसार की घटनाएँ गौण तथा महत्त्वहीन है।

दीर्घ अध्ययन तथा लेखन-काल में क्रोचे के विचारों में स्वाभाविक रूप से ही कुछ परिवर्तन आते रहे हैं। कुछ अवधारणाओं का स्वरूप बदला है और कुछ विशिष्ट मुद्दों पर बल में अंतर आया है। किंतु उनकी मूल प्रत्ययवादी (idealistic) दृष्टि यथावत् बनी रही है।

: 2 :

क्रोचे के पहले भी दार्शनिक सौंदर्यानुभूति के संदर्भ में वस्तु तथा चेतना के सापेक्षिक महत्त्व पर विचार करते रहे हैं। पुनर्जागरण काल में सौंदर्य-चेतना बौद्धिकता से जुड़ी और सौंदर्यानुभूति की दिव्यता तथा आनंदमयता को स्वीकार करते हुए भी इसमें हृदय तथा मस्तिष्क, दोनों की भूमिका को जोड़कर देखा गया। इंग्लैंड में सर फिलिप सिडनी (1554-86) ने कवि को उस अकथनीय और चिरस्थायी सौंदर्य का भावाविष्ट प्रेमी माना था जिसका दर्शन मस्तिष्क के नेत्रों से होता है।

फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त (1596-1650) ने भी सौंदर्यानुभूति के लिए विचार-शक्ति (Thinking Faculty) को महत्त्व देते हुए आनंद को बौद्धिक रस माना। उन्हीं के देशवासी बुअलो (1636-1711) भी सौंदर्यानुभूति में भावावेग के साथ ही कलाकार के विवेक को भी महत्त्व देते थे।

अनुभववादी दर्शन में वस्तुजगत को ज्ञान का आधार माना गया। अनुभव से आरंभ करके तर्कबुद्धिवाद तक पहुँचने वाले एमानुएल कांट (1724-1804) बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों को सौंदर्यानुभूति का आधार मानते हैं। ये संवेदन कल्पना से समंजित होकर सौंदर्यानुभूति में बदलते हैं। हेगल (1770-1831) ने कला का आधार हालाँकि बाह्य जगत के इंद्रियगत संवेदनों को माना है, फिर भी स्वयं उसे वे परम चैतन्य की अनुभूति का माध्यम मानते हैं; अर्थात् कला का आरंभ जड़ वस्तु में होता है, किंतु परिणति विशुद्ध चेतना में।

बेनेदितो क्रोचे के पीछे एक ओर कलावादी, व्यक्तिवादी पृष्ठभूमि थी और दूसरी ओर इससे कुछ कम विस्तृत किंतु यथेष्ट प्रभावशाली अनुभववादी तथा भौतिकवादी पृष्ठभूमि। क्रोचे ने कला के संदर्भ में बाह्य जगत की सत्ता तथा उपयोगितावाद, दोनों को ठुकराया। अपने आरंभिक दौर में इटली की प्राचीन कला

का अध्ययन करते हुए उन्होंने महसूस किया था कि कला की सही समझ के लिए मात्र तथ्यों की जानकारी एकत्र करना व्यर्थ है। कलावादी सिद्धांत के अनुसार कला के मूल्यांकन के लिए सामाजिक, नैतिक, आर्थिक आदि वस्तुपरक कसौटियों का उपयोग अनावश्यक ही नहीं, त्याज्य है। क्रोचे ने सहजानुभूति के लिए भी कलाकार की चेतना, उसके मानस को ही अंतिम सत्य माना, बाह्य जगत अथवा उसके उपकरणों को नहीं। जो अभिव्यंजनावादी कला सिद्धांत जर्मन विचारकों तथा कोलरिज के विवेचनों में पहले पहल सामने आया था, विमसाट तथा ब्रुक्स के अनुसार, उसकी संश्लिष्ट तथा चरम परिभाषा, क्रोचे के सिद्धांत में मिलती है।[1]

चेतना (spirit) को सबसे अधिक महत्त्व देते हुए क्रोचे इसकी चार मूलभूत क्रियाओं का उल्लेख करते हैं जो तत्त्वतः एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। इनमें से दो सैद्धांतिक या ज्ञानपरक क्रियाएँ होती हैं और दो व्यावहारिक या स्वेच्छाचालित।

सैद्धांतिक क्रियाओं के अंतर्गत एक है सहजानुभूति-अभिव्यंजना जो इनमें से प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्रिया है।

दूसरी क्रिया है अवधारणाकरण जो प्रथम क्रिया के बाद आती है। यह तर्काधारित होती है और वैयक्तिक सहजानुभूतियों के परस्पर संबंधों का तर्कसिद्ध तथा वैज्ञानिक ज्ञान देती है। इससे हमें वस्तुजगत को समझने की क्षमता प्राप्त होती है।

इसके बाद व्यावहारिक क्रियाओं के अंतर्गत सामान्य स्वेच्छाचालित व्यवहार या आर्थिक क्रियाकलाप आते हैं।

सबसे अंत में नैतिक क्रिया आती है जो चेतना के सच्चे स्वरूप को उद्घाटित करने के संकल्प से युक्त होती है।

इसे हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकते हैं :

चेतना की क्रियाएँ

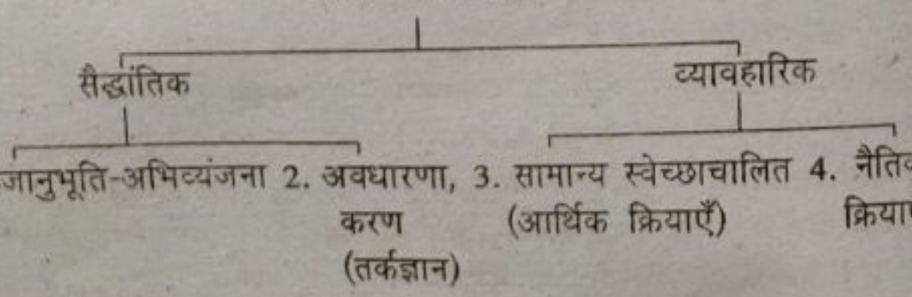

क्रोचे ने इनमें से प्रथम क्रिया अर्थात् सहजानुभूति-अभिव्यंजना (intution, expression) को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। सहजानुभूति कला के लिए

1. लिटररी क्रिटिसिज़्म : ए शॉर्ट हिस्ट्री, विमसाट तथा ब्रुक्स, पृ. 500

अत्यंत आवश्यक है। कलाकार अपने मानस में जो कुछ सहज भाव से अनुभूत करता है, वही कला है। उस अनुभूति को तर्क या बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती। क्रोचे ने उदाहरण देते हुए कहा है कि किसी चित्र के रंग तथा रेखाएँ और किसी गीत के स्वर हमारे मन में सहज ही एक अनुभूति जगाते हैं। आवश्यक नहीं कि हम चित्र में अंकित दृश्य या कथा को, या गीत में वर्णित भावों या गीत की कथावस्तु को जानें या समझें। इस प्रकार की जानकारी या समझ अवधारणा अर्थात् तर्क या बुद्धि के माध्यम से आती है। सहजानुभूति के साथ अवधारणा का मिश्रण संभव तो है, किंतु अनिवार्य नहीं। कला का मूल तथा संपूर्ण तत्त्व सहजानुभूति ही है। बुद्धि, तर्क, दर्शन आदि अवधारणाएँ जहाँ उसके साथ होती भी हैं, वे सहजानुभूति के साथ ही एकाकार हो जाती हैं। उनसे सहजानुभूति या कला का स्वरूप नहीं बदलता, उनके बिना भी कला संपूर्ण होती है।

क्रोचे के अभिव्यंजना सिद्धांत को समझने के पहले यह ध्यान रखना जरूरी है कि उन्होंने सामान्य रूप से कला-विवेचन में प्रयुक्त शब्दावली का इस्तेमाल तो किया है, किंतु अपना विशेष अर्थ देकर। आई. ए. रिचर्ड्स ने इसी संदर्भ में इतालवी समालोचक पैपिनी द्वारा क्रोचे की आलोचना को उद्धृत किया है, "क्रोचे की संपूर्ण सौंदर्यशास्त्रीय व्यवस्था सिर्फ 'कला' शब्द के छद्म नामों की तलाश है और इसे संक्षेप में और बिल्कुल ठीक-ठीक इस सूत्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है : कला = सहजानुभूति = अभिव्यंजना = कल्पना = ललित कल्पना = सौंदर्य। और आपको सावधान रहना होगा कि इन शब्दों को उन अर्थछायाओं और विभेदों के साथ ग्रहण न करें जो कि सामान्य या वैज्ञानिक भाषा में इनके साथ जुड़े होते हैं। हरगिज़ नहीं। हर शब्द विभिन्न अक्षरों की शृंखला है जो अबाध तथा संपूर्ण रूप से एक ही चीज का अर्थ देती है।"[1]

: 3 :

अभिव्यंजना सिद्धांत

क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत सहजानुभूति-अभिव्यंजना पर आधारित है, जो उनके अनुसार चेतना की सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया है। क्रोचे का मत है कि सहजानुभूति (Intution) से ही व्यक्ति को यथार्थ का ज्ञान होता है। कलाकार जगत में जो कुछ देखता है, उसके यथार्थ का बोध उसके मन में सहजानुभूति के रूप में उभरता है जो एक अमूर्त प्रतीति-सी होती है। यह प्रतीति अपने-आपमें स्वतंत्र क्रिया है और यह बौद्धिक अथवा तर्कसिद्ध ज्ञान पर निर्भर नहीं होती। यह इंद्रियगत संवेदन

1. आई. ए. रिचर्ड्स पृ. 255

से भी भिन्न होती है क्योंकि संवेदन में चेतना सर्जनात्मक रूप से सक्रिय नहीं होती। वह पूर्णतः बाह्य-वस्तु या उद्दीपक का प्रभाव भर होता है जिसे मन निष्क्रिय रूप से ग्रहण करता है। मात्र संवेदन से किसी वस्तु का समग्र बोध नहीं होता। बोध केवल चेतना के प्रकाश में ही संभव है। सहजानुभूति में चेतना प्राणवंत रूप से सक्रिय होती है। बाह्य प्रभावों को यह निष्क्रिय रूप से एक छाप के तौर पर ग्रहण नहीं करती। बाह्य जगत की वस्तुओं के रूप, रंग, रेखाओं आदि का बोध तथा विश्लेषण भी इसमें नहीं होता क्योंकि ऐसे बोध तथा विश्लेषण को बुद्धि तथा तर्क की अपेक्षा होती है। सहजानुभूति चूँकि चेतना में यथार्थ की प्रतीति के रूप में उभरती है और चेतना ही अंतिम तथा शाश्वत सत्य है, अतः वस्तु जगत का रूप-रंग-रेखामय तथ्य इसके आगे गौण है।

क्रोचे के मत में यह सहजानुभूति ही 'अभिव्यंजना' (expression) है। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि 'अभिव्यंजना' शब्द का प्रयोग क्रोचे 'बाह्य अभिव्यक्ति' वाले सामान्य अर्थ में नहीं करते। यह शब्द, रंग, रेखा, आकार या ध्वनि के माध्यम से बाह्य जगत में व्यक्त नहीं होती वरन् मानस के स्तर पर होनेवाली सहजानुभूति से अभिन्न है। सहजानुभूति ज्ञान ही अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है और मानस के अंदर सहजानुभूत प्रभावों की अभिव्यंजना ही कला है। कला की स्थिति भी क्रोचे बाह्य जगत के रूप, रंग, आकारों में नहीं, वरन् कलाकार के मानस में मानते हैं। यह भी सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति की तरह पूर्णतः आंतरिक होती है और बाह्य स्तर पर इसका संप्रेषण कतई आवश्यक नहीं है। कला तभी पूर्ण हो जाती है जब हम अपनी सहजानुभूति को अपने मानस में ही बिंब-निर्माण के माध्यम से कविता, चित्र या मूर्ति के रूप में अभिव्यंजित करते हैं। कलाकार यदि अपनी सहजानुभूति को बाह्य स्तर पर काव्य, चित्र या मूर्ति के रूप में अभिव्यक्त करता भी है तो वह एक अतिरिक्त और व्यावहारिक क्रिया है जिसके बिना भी कला के कला होने में कोई बाधा नहीं है। सहजानुभूति-अभिव्यंजना-कला को बाह्य स्तर की इस व्यावहारिक क्रिया से जोड़ना गलत है। हालाँकि दोनों साथ-साथ आ सकते हैं, किंतु यह संग अनिवार्य नहीं है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि कला भी बाह्य स्तर पर तभी व्यक्त होकर संप्रेषित हो सकती है जब पहले वह सहजानुभूति-अभिव्यंजना के रूप में मानसिक स्तर पर उभरे।

सहजानुभूति जहाँ बाह्य स्तर पर काव्य, चित्र, मूर्ति आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है, वहीं कलाकार की स्वतंत्रता समाप्त होने लगती है। सामाजिक नैतिकता तथा उपयोगिता के नियम उस पर लागू होने लगते हैं। सहजानुभूति तब सौंदर्य-सृजन की प्रक्रिया का हिस्सा नहीं रहती, वरन् एक उपयोगी वस्तु के रूप में समाज के सदस्यों को आनंद प्रदान करती है, उनका नैतिक परिष्कार करती है और मन

के स्तर पर पुनःसृजन के लिए उन सुंदर अनुभूतियों को भौतिक रूप में संरक्षित करके स्मृति की सहायक तथा उद्दीपक भूमिका ग्रहण करती है। किंतु सौंदर्य-सृजन में यह फिर भी एक गौण–बल्कि अतिरिक्त क्रिया ही रहती है।

क्रोचे कला की सृजन-प्रक्रिया के चार चरणों को स्वीकार करते हैं जिनमें प्रथम तीन चरण अनिवार्य हैं और चौथा चरण वैकल्पिक।

प्रथम चरण में कलाकार किसी उद्दीपन के प्रभावों के अंतर्गत एक अमूर्त संवेदना का अनुभव करता है।

दूसरे चरण में कल्पना शक्ति के माध्यम से वह उन प्रभावों का संश्लेषण तथा अन्वय करता है।

तीसरे चरण में बिंब-विधान के माध्यम से मानस स्तर पर अभिव्यंजना पूर्ण हो जाती है और उसी स्तर पर कलाकृति भी शब्द, रंग, रेखा, आकार या स्वर की परिकल्पना के रूप में पूर्ण होकर प्रगीतात्मक सहजानुभूति (Lyrical intution) या तन्मय आनंदानुभूति को जन्म देती है।

चौथा और वैकल्पिक चरण है इस मानस अभिव्यंजना का भौतिक स्तर पर काव्य, चित्र, संगीत, मूर्ति आदि के रूप में अवतारण।

इस संदर्भ में आगे चलकर क्रोचे ने बोध (Feeling) को भी बहुत महत्त्व दिया है। समय-समय पर इस शब्द के कई अर्थों पर विचार करते हुए क्रोचे अंततः जिस अर्थ को ग्रहण करते हैं, वह है 'विशुद्ध सहजानुभूति' (Pure intution) जो गैर अवधारणात्मक तथा गैर ऐतिहासिक होती है। वह न वैज्ञानिक होती है, न तथ्यपरक। बोध मानस पर बिंबों में रूपांतरित होता है और अनेक बिंबों के संश्लेषण के माध्यम से यह बोध मात्र अथवा बिंब मात्र से कहीं आगे बढ़कर 'प्रगीतात्मक सहजानुभूति' (Lyrical intution) में बदल जाता है। इस बोध को क्रोचे ने कला की अंतर्वस्तु के लिए आवश्यक माना है; किंतु यह भी समस्त इतिहास और यथार्थ या अयथार्थ के संदर्भों से मुक्त और पूर्णतः भावपरक (ideal) होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए विमसाट तथा ब्रुक्स ने क्रोचे के सिद्धांत को कला के समस्त आधुनिक सिद्धांतों में एक प्रकार से सबसे अधिक 'संज्ञानात्मक' (cognitive) कहा है।[1]

: 4 :

क्रोचे के अभिव्यंजना सिद्धांत के साथ ही जुड़ी हुई उनकी कुछ और अवधारणाओं को समझ लेना भी उचित होगा।

क्रोचे मानते हैं कि सच्चे अर्थों में कला या सौंदर्य का सृजन सायास अथवा

1. विमसाट तथा ब्रुक्स, पृ. 508

संलग्न सामग्री
डॉ० निर्मला जैन
द्वारा लिखित पुस्तक
पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन से
गृहीत है।